मन : एक चिन्तन : विश्लेषण

☐ लक्ष्मीचन्द्र 'सरोज', एम. ए.

मन का स्थान

जैन महापुरुषों ने संसार के प्राणियों को दो भागों में विभाजित किया है—

(१) संज्ञी अथवा समनस्क या मनसहित।

(२) असंज्ञी अथवा अमनस्क अर्थात् मनरहित।

प्रथम संज्ञी की परिभाषा दी—जो मन सहित हो, शिक्षा—उपदेश ग्रहण कर सके। जैसे पुरुष-स्त्री, बच्चा-वृद्ध, बन्दर-घोड़ा, हाथी-कबूतर आदि। द्वितीय असंज्ञी की परिभाषा दी, जो मन-रहित हो, शिक्षा-उपदेश ग्रहण नहीं कर सके, जिसका जन्म माता-पिता के रज और वीर्य के विना हुआ हो। जैसे जल का सर्प, कोई कोई तोता। संसार में समनस्क अधिक हैं अथवा अमनस्क? संसार में विद्वान् अधिक हैं अथवा अविद्वान्? दोनों प्रश्नों का उत्तर लगभग एक ही है यानी समनस्क और विद्वान् अल्प हैं तथा अमनस्क और अविद्वान् अधिक हैं। एकेन्द्रिय [पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, वनस्पति] द्वीन्द्रिय [लट, केंचुआ, जोंक, शंख] त्रीन्द्रिय [चींटी, चिवटा, खटमल, जूं] चौन्द्रिय [भौंरा, बर्र, मक्खी-मच्छर] तक सभी जीव अमनस्क हैं। पंचेन्द्रिय [मनुष्य, पशु-पक्षी, देवता-नारकी] चार भागों में विभक्त है।

मन पाँच इन्द्रियवालों के ही हुआ करता है। यह इन्द्रियों [स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु और कर्ण] से ऊपर है। मन की रचना मनन करने के लिए हुई। मन, शरीर और आत्मा दोनों का प्रतिनिधित्व करता है। मन ही मस्तिष्क को चिन्तन हेतु विचार-शक्ति देता है और मन ही इन्द्रियों को कार्य करने की प्रेरणा देता है। मन, दर्शन-ज्ञान, चारित्र और तप आराधनाओं का आधार बनता है और मन ही यतिज्ञान-श्रुतज्ञान की आधारशिला है। मन की महत्ता शब्दातीत है। मन, सुमन होकर अपनी सुगन्ध से संसार को भी सुवासित करता है, सदाचारी होकर संसार सन्तुलित सुखद जीवन का सन्देश "जिओ और जीने दो" देता है पर मन कुमन होकर को दुराचारों की दुर्गन्ध लिए संसार को दुःखमय बनाता है, अशान्ति और अविवेक लिए युद्ध को तीर्थ बनाता है, शस्त्रों का व्यापारी बनता है, प्रस्तर की नौका सा स्वयं डूबता है और अन्य आसीन जन-समुदाय को भी डुबाता है। चूंकि सुमन, आग में बाग लगाता है और कुमन, बाग में आग लगाता है, अतएव योगवाशिष्ठकार की यह सूक्ति सहज ही समझ में आ जाती है कि मन, एक नदी के समान है, जो पाप और पुण्य—दोनों ओर बहती है।[1] मन को द्विमुखी जोंक समझ ही शायद सर्वार्थसिद्धिकार ने भी ईषद् इन्द्रिय या अनिन्द्रिय लिखा है।

---

१. चित्तनदी नाम उभयवाहिनी वहति पापाय च पुण्याय च।

धम्मो दीवो
संसार समुद्र में
धर्म ही दीप है

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गोम्मटसार ग्रन्थ में मनुष्य की परिभाषा दी गई—जो मनु की सन्तान हो, मति और मनवान् हो वह मनुष्य है। मनु यानी सुधर्म का प्रतिनिधि, अध्यात्म की दिशा में—स्व (आत्मा) और पर (शरीर) का भेदविज्ञानी और लोक-जीवन की दिशा में स्व (अपना) पर (पराया) भेद भाव रहित उदारहृदय, जीवन्मुक्त अर्हन्त (पूज्यतम पुरुष) पर आस्था रखने वाला हो, उसका उत्तराधिकारी अनुयायी हो। जिसके मन हो अर्थात् अपना भला-बुरा, सोचने-समझने, करने-कराने की शक्ति हो, जो मन से मनुष्य को मनुष्य समझे, माने और स्वतन्त्रता, समानता, भ्रातृत्व का भाव रखे, वही मन मन है, अन्यथा मन माप का मन है, ताप का मन है, पाप का मन है, पर जाप का मन नहीं, आपका मन नहीं, नाप का मन नहीं है बल्कि शाप का मन है। मति से आशय बुद्धि-मनीषा, धिषणा-धी, प्रज्ञा-शेमुषी का है। मति से अभिप्राय स्मृति, संज्ञा, चिन्ता, अभिनिबोध का है। बुद्धि बल से बड़ी है और मनीषा छल से दूर खड़ी है तथा धिषणा को तृष्णा तो फूटी आँखों भी नहीं सुहाती है एवं धी मनुष्य को जहाँ सुधी बनने की प्रेरणा देती है, वहाँ कुधी से बचने की भी प्रेरणा देती है। प्रज्ञा तो वह छैनी ही है, जो अज्ञान के अरावली को तोड़ फोड़ कर दिन-रात ज्ञान के द्वार खोलने में लगी है। शेमुषी शम-उषा का स्वप्न सँजोए है। मति, मत-भेद लेकर भी मन-भेद की रोकथाम कर रही है। स्मृति, अतीत को नहीं भूलने वाली है तो संज्ञा, अतीत और वर्तमान को जोड़ने वाली कड़ी है और चिन्ता तो त्रिकालदर्शी बनने के लिए चिन्तित ही रहती है तथा अभिनिबोध अपने अध्ययन-अनुभव-अभ्यास के अस्त्र लिए मानवता को विनाश के कगारों से हटाने में लगा है। मतिज्ञान की सुलभ सामग्री न तो स्वयं की है और न इस जन्म की है बल्कि यह श्रुतज्ञान की भी है और श्रवण-श्रमण परम्परा की भी है। तीर्थंकरों की दृष्टि से मति और श्रुत, ये दो ज्ञान संसार के सभी प्राणियों में पाये जाते हैं। अक्षर के अनन्तवें भाग ज्ञान तो निगोद के जीवात्मा को भी होता है। इतना न हो तो जीव अजीव बन जावे। तत्त्व-व्यवस्था गड़बड़ हो जावे। जहाँ आत्मा है, वहाँ ज्ञान है, जहाँ ज्ञान है, वहाँ आत्मा है।

मन मोदक है; मन ओदन है। मन लोहा है, मन सोना है। मन जीरा है, मन हीरा है। मन मौजी है, मन मौनी है। मन नटखट है, मन झटपट है। मन करवट है, मन सलवट है। मन मरघट है, मन घट-पट है। मन चटपट है, मन खटखट है। मन कटमर है, मन मर्कट है। मन जड़ है, मन चेतन है। मन निराशा है, मन आशा है। मन दिन है, मन रात है। मन गरमी है, मन सरदी है। मन स्वभाव है, मन विभाव है। मन अभाव है, मन जमाव है। मन हाव है, मन भाव है। मन चाव है, मन अलगाव है। मन तन-हार है, मन मनहार है। मन मनिहार है, मन मनुहार है। मन पूर्व है, मन पश्चिम है। मन उत्तर है, मन दक्षिण है। मन शैतान है, मन हैवान है। मन बेईमान है, मन ईमान है। मन असत्य है, मन सत्य है। मन मायावी है, मन बेताबी है। मन छल है, मन बल है। मन बालक है, मन युवा है। मन प्रौढ़ है, मन वृद्ध है। मन कंस है, मन कृष्ण है। मन रावण है, मन राम है। मन आनन्द है, मन बुद्ध है। मन गौतम है, मन महावीर है। मन शाला है, मन माला है। मन हाला है, मन ताला है। मन गोरा है, मन काला है। मन धर्म है, मन दर्शन है। मन साहित्य है, मन संस्कृति है। मन हिन्दी है, मन संस्कृत है। मन भरता है; मन मरता है। मन आदि है, मन अन्त है। मन मध्यम है, मन माध्यम है। मन शेष है, मन लेश है। मन गणेश है, मन महेश है। मन मक्कार है, मन सत्कार है। मन दुत्कार है, मन पुचकार है। मन बिन्दु है, मन सिन्धु है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मन इन्दु है, मन हिन्दु है। मन तूर्य है, मन सूर्य है। मन वेश है, मन देश है। मन दायें है, मन बाएँ है। मन ऊपर है, मन नीचे हैं। मन जीवन है, मन जंजाल है। मन समझना सरल है, मन समझना जटिल है। मन अनियन्त्रित है, मन नियन्त्रित है। मन फिदा है, मन विदा है, मन कुछ नहीं, मन सब कुछ है। मन भ्रामक है, मन नियामक है। मन छोटा है, मन मोटा है। मन प्रश्न है, मन उत्तर है। मन मृत्यु है, मन जीवन है।

मन की सृष्टि

मन के दो भेद हैं:—(१) द्रव्य मन (२) भाव मन। द्रव्य मन पौद्गलिक रचना है; इसका जीवन धड़कन है। यह शरीर की घड़ी का पेण्डुलम है और जीवन की घड़ी की सूचना है। यह नाड़ी का मूल आधार है। यह वंशानुक्रम से प्रभावित होता है। मनुष्य का मन एक मन्दिर है, उसमें आत्मदेव प्रतिष्ठित है; वहाँ जो जैसी आवाज लगाता है, वह वैसा व्यवहार पाता है।

द्रव्य मन, भाव मन का आधार है। जैसे वस्तु की संख्या गुणवत्ता पर बाजार-भाव है, वैसे द्रव्य मन के आधार पर भाव मन भी न्यूनाधिकता, उत्थान-पतन, संकोच-विस्तार लिए ज्वार-भाटा बना है। द्रव्य मन की अपेक्षा भाव मन की उतनी अधिक शक्ति और सत्ता है कि जितनी भी शक्य और सम्भव है। यह भाव मन की सजगता का ही सुपरिणाम है कि वह भोगी से रोगी और योगी भी बनता है। संयोगी, वियोगी, नियोगी ये सब भाव मन की देन हैं। भाव मन से ही नर नारायण, आत्मा परमात्मा, अप्पा परमप्पा है। भाव मन से ही साधक-साध्य, आराधक-आराध्य है। भाव मन से आस्रव बन्ध संवर-निर्जरा है। भाव मन से ही स्वर्ग-अपवर्ग है। भाव मन से ही गुणस्थान, जीव समास, मार्गणा हैं। भाव मन का विश्व अपने में एक ही है, प्रत्येक प्राणी मन पर रीझा है।

मन का महल छोटा होकर भी बहुत बड़ा है। मन, दैनिक पत्र-प्रकाशन कार्यालय के समान है, जिसका स्थान सीमित हैं, पर रचना-संसार असीमित है। अ-मन के अखबार मनुष्य अतीव अमन के साथ पढ़ते हैं पर मन के अखबार विरले पढ़ते हैं। जो नहीं पढ़ना चाहिए, वह दिन-रात आँखे फाड़ फाड़ पढ़ते हैं। लगता है कि मन नादानी के साथ मनमानी भी करता है। जब तक मन की मनमानी नहीं मिटती है तब तक मनुष्य अमनुष्य रहेगा, मनुष्य नहीं बनेगा, युद्ध के लिए प्रस्तुत होगा, अयुद्ध के लिए अप्रस्तुत। मनुष्य के शरीर में बायीं ओर स्थित मन, जाग्रत अवस्था की तो कौन कहे; निशीथ के सपनों में भी मिलखासिंह धावक बनकर दौड़ लगाता रहता है। मन, चंचलता में मर्कट को मात देता है और गतिशीलता में पवन से बाजी मार जाता है। महाभारत के 'यक्ष-युधिष्ठिर संवाद' में मन को मरुत से बढ़कर बतलाया गया। आचार्य हेमचन्द्र ने योगशास्त्र में लिखा—जहाँ मन है, वहाँ मरुत है, जहाँ मरुत है, वहाँ मन है। दोनों परस्पर कारण-कार्य हैं।[1] मन ही हार-जीत, बन्धन-मुक्ति का कारण है।

मन का सम्बन्ध उपयोग से है। चेतना और वेदना से है। इस दृष्टि से मन के तीन भेद हैं:—(१) अशुभ मन (२) शुभ मन (३) शुद्ध मन। संक्षेप में समझें—

---

१. मनो यत्र मरुत् तत्र, मरुद् यत्र मनस्ततः। अतस्तुल्यक्रियावेतौ संवीतौ क्षीरनीरवत्॥

धम्मो दीवो
संसार समुद्र में
धर्म ही दीप है

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अशुभ मन

पाप का सृजन करता है। क्रोध, मान, माया, लोभ जैसे दुर्गुण स्वीकार करता है। हिंसा झूठ चोरी कुशील परिग्रह पाप बटोरता है। जुआ खेलना, मांस खाना, मदिरापान करना, वैश्या-गमन करना, शिकार खेलना, चोरी करना, परकीया रमणी से रमण करना जैसे नशा व्यसन करता है। ज्ञान, पूजा, जाति, कुल, बल, ऋद्धि, तप वपु, के मद में मतवाला होता है। खाओ, पिओ और मस्त रहो का परमविश्वासी होता है। 'लेकर दिया, कमाकर खाया—तो तूं व्यर्थ जगत में आया' का अपार आस्थावान् होता है। यह भौतिक संस्कृति व पाश्चात्य सभ्यता का परम उपासक होता है। स्वर्ग और नरक, धर्म और कर्म का अतीव अविश्वासी होता है। यह प्रबल स्वार्थी बहुभाग में आत्मकेन्द्रित होता है।

शुभ मन

पुण्य का सृजन-संचयन करता है। क्षमा, मदुता, सरलता, निर्लोभता जैसे सद्गुण स्वीकारता है। अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह को भी अपूर्णतया अथवा पूर्णतया स्वीकारता है। यह विपरीत मान्यतामूलक मिथ्यात्व से बचता है, मिथ्या आचार विचार इसे सुहाते नहीं हैं। प्रशम, संवेग, अनुकम्पा, आस्तिक्य, मोक्षमूलक सम्यक्त्व इसे रुचता है, यह श्रमणोपासक बनकर श्रमण भी बनने को उत्सुक रहता है। यह लोक-परलोक का विश्वासी होता है। सहधर्मी बन्धुओं के प्रति अनुरागी होता है। शौच, संयम, तप, त्याग, आकिंचन्य, ब्रह्मचर्य पर इसकी अखण्ड आस्था होती है। यह अल्पारम्भी, अल्पपरिग्रही, स्वदारसन्तोषी होकर लोक-जीवन में प्रामाणिक व्यक्ति होता है। यह श्रद्धा-विवेक-क्रियावान् होने से शुद्ध मन लिए परोपकारपरायण होता है व जीव-दया का केन्द्र-बिन्दु होता है।

शुद्ध मन

अशुभ मन रागी-द्वेषी होता है, शुभमन राग-द्वेष से बचने के लिए प्रयत्नशील होता है, पर शुद्ध मन लोक में रह अलौकिक जीवन्मुक्त होता है। यह वीतरागी, सर्वज्ञ, हितोपदेशी बनने के लिए सर्वस्व समर्पण करता है। शुद्ध मन तो समता दर्शन का जनक होता है। शुद्ध मन समभाव के धर्म का उत्स होता है शुद्ध मन सद्यःशिशु सा अतीव निर्विकार होता है। यह कांच-कंचन, महल-मसान, निन्दा-प्रशंसा, सुख-दुःख, शत्रु-मित्र जैसे भेद-भावों से ऊपर उठता है। समाज से अपने लिए कुछ भी नहीं चाहकर बहुत कुछ देने के लिए कृतसंकल्प होता है। इसकी जिजीविषा, अनुभूति, आचरणशीलता अद्भुत अनोखी होती है। लोग इसे पाकर अपना अहोभाग्य समझते हैं। यह बाहर-भीतर एक होता है।

नियमन की दृष्टि से मन को दो विभागों में विभक्त किया जा सकता है :—
(१) नियन्त्रित मन (२) अनियन्त्रित मन।

नियन्त्रित मन—पूर्वापर विचारक होता है। लोक-लाज से भयभीत होता है। धर्मभीरुता को गुण मानता है। पाप से डरता है, पुण्य पर प्राण देता है। संयम और साहस को स्वीकारने वाला नियन्त्रित मन अपनी गति (गमन-शक्ति) को सुगति बना लेता है। अपने स्वामी को मनुष्य और देवगति में ही नहीं बल्कि ऊर्ध्वमुखी होने से लोकाग्रवर्त्तिनी सिद्ध-शिला पर भी आसीन कराता है। जन्म, जरा और मरण के दुखों से मुक्ति के लिए नियन्त्रित मन रामबाण।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अमोघ औषधि है। नियन्त्रित मन से लोकजीवन ही नहीं बल्कि पारलौकिकजीवन भी मंगलमय होता है। नियन्त्रित मन अनुकूल मित्र है। यह सही दिशा में समुचित गन्तव्य स्थल तक पहुँचाता है। यह संवर-निर्जरा का कारण है।

अनियन्त्रित मन—

किसी भी प्रकार के बन्धन को स्वीकार नहीं करता है। पूर्णतया अराजकतावादी होता है। अनियन्त्रित मन में अपारगति होती है पर अपार परिणाम सोचने की शक्ति नहीं होती है। अनियन्त्रित मन उस मर्कट के समान है, जो एक तो स्वभावतः चञ्चल, दूसरे कोई उसे सुरा पिलादे, तीसरे स्त्री-विच्छू से कटादे तो यह उछल कूदकर नर से वानर, राम से रावण बनता है और शत्रु हो कर, आस्रव-बन्ध करके सर्वश्रेष्ठ योनि मानव को निकृष्टतम योनि निगोद में ले जाता है। अनियन्त्रित मन उस वाहन (सायकल, मोटर, स्कूटर, रेलगाड़ी, हवाई जहाज) सदृश है, जिसमें गति है पर नियामक रोकथामकारी ब्रेक नहीं है। अनियन्त्रित मन, अनपढ़, अज्ञानी, अशिक्षित, अकुलीन, अमानुषिक पर ही प्रभाव जमा पाता है, अपनी बाढ़ में बहा पाता है, कभी भूले-भटके ज्ञानी शिक्षित कुलीन को भी बहा ले जाने का नाटक करता है। उनके सद्गुणों की परीक्षा लेने का नाटक करता है। अनियन्त्रित मन अधोमुखी है। वह मनुष्य को नरक और तिर्यञ्च गति में ले जाता है। एक वाक्य में अनियन्त्रित मन अतीवत्रास मूलक है।

अनियन्त्रित मन बरसाती बाढ़वाली मलिन सरिता है और नियन्त्रित मन शीत-ग्रीष्मकालीन स्वच्छसलिला विमला सरिता है। जहाँ अनियन्त्रित मन अपने अस्तित्व के हेतु संघर्ष करने को कटिबद्ध रहता है, वहीं नियन्त्रित मन अपने सम्मान को सुरक्षित रखने के साथ अन्य के भी मान-महत्त्व को स्वीकार करता है। विचार के धरातल पर अनियन्त्रित मन से नियन्त्रित मन श्रेष्ठतम है।

भावना के उत्थान-पतन की दृष्टि से मन के दो भेद हैं:— १. आशावादी मन, २. निराशावादी मन।

१. आशावादी मन—आशावाद जीवन है। आशावादी मन की आस्था है—'हारिये न हिम्मत बिसारिए न हरि-नाम।' आशावादी मन लेकर मनुष्य गुलाब के उद्यान में विहार की नीयत से जाये तो गुलाब के हँसते कोमलतम प्रसून को देखकर विचारने लगे—जब गुलाब का फूल एकेन्द्रिय इतने काँटों के बीच मुस्करा सकता है, तब मैं पाँच इन्द्रियों वाला मनुष्य चार-छह दुःख के कांटों से घबरा कर चेहरा लटकाऊं, आत्महत्या की विचारूं तो मुझे धिक्कार है। मेरी शिक्षा, संस्कृति, धर्म, प्रतिभा व्यर्थ है। गुलाब के प्रसून-सी हँसती जिन्दगी व्यतीत करना ही मेरा कर्त्तव्य है। माना कि कर्म अनादिकालिक हैं और मैं तीर्थंकर-चक्रवर्ती-बलभद्र सा समर्थ नहीं हूँ किन्तु कर्मभूमि का सामान्य मनुष्य तो हूँ, एकदम पुरुषार्थ-विहीन तो नहीं हूँ। इसलिए चेतन स्वभावी आत्मा होकर मैं जड़कर्मों से कभी भी हार नहीं मानूंगा। अशुभ आश्रव से बचकर शुभ आश्रव तो कर ही सकता हूँ, अपकार के स्थान में उपकार कर सकता हूँ और अपवर्ग नहीं तो स्वर्ग तो प्राप्त कर सकता हूँ। मैं संकल्पप्रधान आशावादी ही जीवन पर्यन्त रहूंगा।

धम्मो दीवो
संसार समुद्र में
धर्म ही दीप है

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२. **निराशावादी मन**—गुलाब के बगीचे में विहार के लिए जाये तो कांटों के बीच खिले गुलाब के फूल को देखकर विचारने लगे—एक गुलाब और सौ कांटे, एक आत्मा आठ कर्म। कर्म अनादिकालिक, इनको जीतना महा मुश्किल, पंचमकाल हीन संहनन, कर्म विजेता बनने में जब तीर्थंकर, चक्रवर्ती बलभद्र कठिनाई का अनुभव करते हैं तब सामान्य मनुष्य की क्या हस्ती जो कर्मरूपी पहाड़ों के लिये बज्र बने। निराशावादी कोल्हू के बैल की तरह अतीव अनुत्साही होकर जीवन बिताता है। निराशावादी कर्मों के आगे नाचता है और आशावादी कर्मों को नाच नचाता है।

आचार्य हेमचन्द्र ने अपने अमर यशस्वी 'योगशास्त्र' में मन के ४ भेद किये—

१. विक्षिप्त, २. यातायात, ३. श्लिष्ट, ४. सुलीन।*

मन का यह वर्गीकरण भी मनोवैज्ञानिकों के लिए वाञ्छनीय है और इसके बिना वे चमत्कारी मानव नहीं बन सकेंगे। चूंकि मन सभी मनुष्यों के समीप है, अतएव यह सत्य तथ्य सभी के लिए, सम्पूर्ण सृष्टि के लिए, ज्ञातव्य और ध्यातव्य है।

१. **विक्षिप्त मन**—इधर-उधर भटकता रहता है। यह एक प्रकार का बनजारा आवारा है। जो घड़ी में बाहर आता है, घड़ी में भीतर जाता है। विक्षिप्त मन पागल या मिथ्यादृष्टि जैसा है जो अपनी माँ को मां कहने के साथ बहन, बहू, बेटी, स्त्री भी कह बैठता है। विक्षिप्त मन वह अबोध बालक है, जो शीघ्र रूठता और संतुष्ट होता है। विक्षिप्त मन उस खादी के समान है, जो जल्दी साफ होती है और जल्दी गन्दी होती है।

२. **यातायात मन**—विक्षिप्त नहीं सावधान है। अपने कार्य हेतु सजग सतर्क है। माल गोदाम में जैसे माल का आयात-निर्यात होता है, वैसे ही यातायात मन में भावनाओं का ज्वार-भाटा आता-जाता है। यातायात मन में विभ्रम नहीं विलास है। लाभ की ओर दृष्टि है, हानि से बचाव का प्रयत्न है। यातायात मन वाला कभी शरीर की सत्ता भुलाकर भी आत्मा में क्षणिक काल के लिए सुस्थिर होने का प्रयास करता है।

३. **श्लिष्ट मन**—विक्षिप्त में बेचैनी है, यातायात में अस्थिरता। श्लिष्ट मन स्थिरता सहित होता है, इन्द्रियरूपी अश्वों को रोकने की उसमें अपूर्व क्षमता होती है। श्लिष्ट मन समाधि में समाविष्ट होने का स्वप्न देखता है, प्रयास करता है, जितने काल तक स्थिर रहता है, आनन्द का अनुभव करता है। श्लिष्ट मन उस विद्यार्थी के तुल्य है जो प्रथम श्रेणी के अंकों के लिए अध्ययन, अनुभव, अभ्यास अतीव आवश्यक मानकर तदनुकूल प्रवृत्ति करता है। यह अग्रसर पुरोगामी होता है। वाहन का इंजन जैसा है।

४. **सुलीन मन**—सुलीन शब्द ही बतलाता है कि उसका धारक अपने में अनन्य भाव लिए है, अभीष्ट साध्य की प्राप्ति के लिए सम्पूर्णतया समर्पित है। सुलीन मन मति वाला अपने कार्य-हेतु अनवरत-अविश्रान्त रूप में जागरूक रहता है और 'जागरूक की जय निश्चित है' मानता है। सुलीन मन दिव्य आनन्द पाता है और प्रामाणिकता की उपाधि धारण करता है। सुलीन मन सब कुछ कर सकता है।

---

* इह विक्षिप्तं यातायातं श्लिष्टं तथा सुलीनं च।
चेतश्चतुःप्रकारं तत् सचमत्कारकारि भवेत्॥ —अ. १२ श्लोक २

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विक्षिप्त और यातायात मन जितनी बाहरी वृत्ति वाले हैं, श्लिष्ट और सुलीन मन उतनी भीतरी वृत्ति वाले हैं। पहले में उद्धतता दूसरे में उच्छृंखलता, तीसरे में शालीनता, चौथे में तल्लीनता है। विक्षिप्त अड़ियल घोड़ा गोलाकार घूमता, यातायात निरुद्देश्य भागता, श्लिष्ट सही दिशा पकड़ता, सुलीन गन्तव्य स्थान पाता है।

मन की महिमा

(१) मन, अविश्वासी धीवर है। जैसे धीवर जल में जाल फैला मछलियाँ फँसाता है, वैसे ही मनरूपी धीवर खोटे विकल्पजाल में फँसकर नरकाग्नि में जलाता है। इसलिए मन के मत के अनुसार मत चलिए, मन के अनेक मत है, यह समझकर एक मन को जीतें और मन को वश में कर सही साधु बनें।

(२) मन, को मित्र बनाइये, प्रार्थना कीजिए कि दीर्घकालिक मित्र ! कृपा करो, बुरे विकल्पों से बचाओ, संसार में मत फँसाओ, सत्संकल्पों से सन्नद्ध करो।

(३) मन पर अंकुश रख मन को वश कर लो तो क्षण भर में वह स्वर्ग-मोक्ष भी दे सकता है। कार्य भले न हो पर मानसिक चिन्तन से मन तो अपराधी होता ही है। तन्दुल मत्स्य सप्तम नरकगामी ज्वलन्त उदाहरण है।

(४) न देवता सुख-दुख देते, न शत्रु-मित्र-काल कुछ करते, मनुष्य को मन ही घुमाता है।

(५) जिसका मन वश में है, उसे नियम-यम से क्या लेना देना और जिसका मन वश में नहीं है उसका जप-तप-संयम निष्फल निरुद्देश्य है।

(६) दान-ज्ञान, तप-ध्यान जैसे धार्मिक अनुष्ठान मन का निग्रह किये बिना सम्भव नहीं है। कषायजनित चिन्ता आकुलता-व्याकुलता बढ़ाती है। जिसका मन वश में है, वह योगी है उसकी देव-पूजा, शास्त्र-स्वाध्याय, संयम-तप-दान गरुड़—उपासना सफल है।

(७) न जप से मोक्ष मिलता, न अन्तरंग बहिरंग तप से, न संयम, दम, मौन-धारण प्राणायाम से मोक्ष मिलता; मोक्ष तो अन्तःकरण को जीतने से मिलता है।

(८) जिनेन्द्र भगवान् द्वारा कथित, जैनधर्म रूपी दुर्लभ जहाज को पाकर भी यदि मनुष्य मन रूपी पिशाच से ग्रस्त होकर संसार-समुद्र में गिरता है तो चेतन (बुद्धिमान्) नहीं बल्कि जड़ (मूर्ख-अज्ञानी) ही है।

(९) जिसका मन विवश है, उसके मन वचन काया तीन दुश्मन हैं। ये विपत्ति का पात्र बना देंगे।

(१०) हे चित्त रूपी बैरी ! मैंने तेरा क्या अपराध किया, जो चिद्रूप में रमण नहीं करने देता, बुरे विकल्पों के जाल में फँसा दुर्गति में फेंकता है। मोक्ष के सिवाय अन्य भी स्थान हैं, जहाँ मनुष्य सुख-शान्ति का वरण कर सकता है पर तू तो मेरा कहना ही नहीं सुनता।

(११) जिस प्राणी का मन विषम है, विषाक्त है, वह सन्ताप ही पाएगा। जैसे कुष्ठ रोगी को कोई सुन्दरी नहीं चाहती, वैसे ही विपत्ति के मारे को भी लक्ष्मी नहीं चाहती।

धम्मो दीवो
संसार समुद्र में
धर्म ही दीप है
Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(१२) कोई कितना भी विद्वान् हो पर मनोनिग्रही नहीं तो नरक ही जाएगा। जब कभी भी मोक्ष होगा तब मनोनिग्रही को ही होगा। मनोनिग्रह का उपाय स्वाध्याय, योग-वहन, चारित्रक्रिया का व्यापार, बारह भावना का चिन्तन, मन-वचन-काय की सरलता है।

(३३) जिसके मन रूपी वन में भावना/अध्यवसाय रूपी सिंह जागृत है, वहाँ दुर्ध्यान रूपी शूकर कभी नहीं आएगा। जिसने मन को साध लिया उसने सब साध लिया, ऐसा कवि आनंदघन का मत है।

(१४) जो शरीर से नहीं, मन से संसार त्यागते हैं, वे ही भगवान् के निकट हैं। यह कहने वाले तुकाराम ने हिन्दी भाषा में लिखा—कहे तुका मन यूँ मिल राखो। राम रस जिह्वा नित फल चाखो।

(१५) कबीर के शब्दों में मन का मुरीद सारा संसार है, गुरु का मुरीद कोई साधु ही है। मन समुद्र है, लहर है, इसमें अनेक डूबते हैं, बहते हैं, पर विवेकी बहते नहीं बचते हैं।

(१६) विहारी के शब्दों में जिसका मन कच्चा है, उसका नाचना व्यर्थ है। जप, माला, छापा, तिलक से क्या होगा? राम तो सच्चे मन पर रीझते हैं। जब तक मन में कपट के कपाट लगे हैं, तब तक भगवान् भला कैसे आ सकते हैं?

'मन : एक चिन्तन : विश्लेषण' निबन्ध का समापन करते हुए यही लिखना है कि मन को शिक्षा दो, मन की परीक्षा लो। मन को साथ लेकर चलो। मन से बात करो। मन को आधार बनाओ। मन की मान्यता करो। मन के राक्षस को काम बताओ। मन के साक्षर को ठीक तरह पढ़ाओ।

—बजाज खाना
जावरा (म. प्र.)

□□

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org